मालवा कॉटन एंड स्पिनिंग मिल्स लिमिटेड

बनाम

विरसा सिंह सिधु और अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 1265/2008)

13 अगस्त, 2008

(डॉ अरीजीत पसायत और डॉ मुकुंदकम शर्मा न्यायाधीश)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973; धारा 482 परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881; उपधारा 138 व 141:

चैक का अनादरण- अभियुक्त निदेशक ने कथित तौर पर चैकों को जारी करने से पहले पुनः हस्ताक्षरित किया- उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 दं.प्र.सं. की शक्तियों का प्रयोग करते हुए निदेशक के विरुद्ध कार्यवाही का अपास्त करना- शुद्धता- निर्णीतः तथ्यात्मक विवाद होना- कम्पनी द्वारा निदेशक के त्याग पत्र को स्वीकार करना और उक्त त्याग पत्र की सूचना कम्पनी रजिस्ट्रार को देरी से प्रेषित करने का प्रभाव ऐसे मामले हैं, जिनके लिए साक्ष्य पेश करना आवश्यक है- इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय द्वारा कार्यवाही को अपास्त करना न्यायोचित नहीं था।

हस्तगत अपीलों में जो विचार योग्य प्रश्न उद्भूत होता है, वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरुद्ध धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के अंतर्गत कथित तौर पर कंपनी द्वारा जारी चैकों के अनादरण की कायर्वाही अपास्त करना न्यायोचित था, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 1 निदेशक के रूप में कार्यरत था। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने कथित तौर पर चैकों को जारी करने के पूर्व कंपनी के निदेशक पद से त्याग पत्र दे दिया।

अपीलार्थी ने यह तर्क दिया कि प्रत्यर्थी संख्या 1 चैकों के जारी करने से पूर्व त्याग पत्र देने का दावा करता है। हालांकि, कम्पनी रजिस्ट्रार को प्ररूप संख्या 32 की सूचना चैकों के जारी करने के काफी समय पश्चात प्रेषित की गई थी; और प्रत्यर्थी संख्या 1 का उक्त दावा तथ्यात्मक रूप से सही है या नहीं, यह विचारण के दौरान स्थापित होता और उच्च न्यायालय धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के आवेदन पर विचार करते समय विवादित निर्णय पारित नहीं कर सकता था। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय अपने इस मत में न्यायसंगत था कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने कंपनी को अपने त्याग पत्र की इच्छा से सूचित कर दिया था। यदि कंपनी द्वारा सुसंगत प्रारूप कंपनी रजिस्ट्रार को विलंब से प्रेषित किया गया तो उसका भुगतान वह नहीं कर सकता।

अपीलें स्वीकार करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया किः यह तथ्यात्मक विवाद है। कंपनी रजिस्ट्रार के समक्ष विलंबित प्रस्तुति का क्या प्रभाव होगा यह विचारण का बिंदु है। क्या प्रत्यर्थी संख्या 1 ने कंपनी को सूचित किया और क्या उसके त्याग पत्र को स्वीकार करने का कोई प्रस्ताव था, इन सभी तथ्यों पर साक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक है इसलिए उच्च न्यायालय का मत न्यायोचित नहीं था। जहाँ तक निदेशकों के खिलाफ कंपनी में उनके पद के संदर्भ में आरोपों का प्रश्न है, तो परिवाद में कंपनी के अभियुक्त निदेशकों के पद के संदर्भ में विनिर्दिष्ट रूप से अभिकथन है इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरुद्ध कार्यवाही को अपास्त करना न्यायोचित नहीं था। (पैरा 6, 7 and 11) [71, ई-एफ; 75, डी]

एस. वी. मजूमदार बनाम गुजरात राज्य उर्वरक कंपनी लिमिटेड और एन. आर. (2005) 4 एस. सी. सी. 173 और एन. रंगाचारी बनाम भारत संचार निगम लिमिटेड (2007) 5 एस. सी. सी. 108-पर आधारित था।न्यायिक दृष्टांत संदर्भ

(2005) 4 एससीसी 173 आधारित पैरा-9

(2007) 5 एससीसी 108 आधारित पैरा-10

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकारिताः आपराधिक अपील संख्या 1265/2008

पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ की आपराधिक विविध संख्या 52153-एम/2002 के अंतिम आदेश दिनांक 10.02.2005 से

के साथ

आपराधिक अपील संख्या 1266, 1267, 1268, 1269, 1270, 1271 और 1272/2008

अपीलार्थी की ओर से संजय कपूर, शुभ्रा कपूर, राजीव कपूर और आरती सिंह।

प्रत्यर्थियों की आरे से पी.पी. सिंह।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति डॉ. अरिजीत पसायत द्वारा पारित गया।

एस.एल.पी. (आपराधिक) 6049/2005

1. अपील की अनुमति दी गई।

2. इस अपील द्वारा पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 की प्रार्थना स्वीकार करते हुए न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, लुधियाना के समक्ष लंबित प्रकरण की कार्यवाही अपास्त करने के आदेश को चुनौती दी गई है। कार्यवाही अपीलार्थी द्वारा धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (संक्षिप्त में 'अधिनियम') के अंतर्गत दण्डनीय अपराध को कथित करते हुए दर्ज परिवाद से संबंधित थी। कुल 8 याचिकाएं पेश की गई थीं, जिनका निस्तारण समान निर्णय द्वारा दिया गया।

3. वर्तमान अपीलें आपराधिक विविध नंबर 52153/2002 और संबंधित मामलों से संबंधित थीं। उच्च न्यायालय ने कार्यवाही मुख्य रूप से इस आधार पर अपास्त की कि प्रत्यर्थी संख्या 1 विरसा सिंह सिद्धू ने प्रथम प्रकरण में चैकों को जारी करने से पूर्व निदेशक पद से त्याग पत्र दे दिया था। अन्य याचिकाएं इस आधार पर स्वीकार की गईं कि उनमें ऐसे साधारण आरोप थे कि सभी निदेशक उत्तरदायी हैं।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय का निर्णय सही नहीं है। जहाँ तक प्रत्यर्थी संख्या 1 का प्रश्न है तो वह दिनांक 02.04.1999 को त्याग पत्र देने का दावा करता है, जबकि चैक दिसंबर 2000 व फरवरी 2001 विभिन्न तिथियों पर जारी किए गए थे। यह इंगित किया गया कि जिस प्ररूप संख्या 32 की कंपनी रजिस्ट्रार के समक्ष पेश करने की आवश्यकता थी, वह दिनांक 05.07.2001 यानी चैकों के जारी करने के काफी समय बाद पेश किए गए थे। क्या वास्तव में प्रत्यर्थी संख्या 1 के त्याग पत्र का दावा तथ्यात्मक रूप से सही था, यह विचारण में साबित हो सकता था और प्रत्यर्थी संख्या 1 का उक्त दावा तथ्यात्मक रूप से सही है या नहीं यह विचारण के दौरान स्थापित होता और उच्च न्यायालय धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षिप्त में 'संहिता') के आवेदन पर विचार करते समय विवादित निर्णय पारित नहीं कर सकता था। आगे यह भी इंगित किया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया जाना सही नहीं था कि अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध कोई विनिर्दिष्ट आरोप नहीं थे। परिवाद के संदर्भ में यह इंगित किया गया कि उसमें यह विनिर्दिष्ट रूप से अभियोग थे कि अभियुक्त व्यक्ति दिन-प्रतिदिन प्रबंधन कार्य के प्रभारी थे। किसी भी हाल में यह ऐसा प्रश्न नहीं है जिस पर संहिता की धारा 482 की कार्यवाही में विचार किया जाए। यह विचारण का बिंदु है।

5. प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने दूसरी ओर तर्क दिया कि उच्च न्यायालय अपने इस मत में न्यायसंगत था कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने कंपनी को अपने

त्याग पत्र की इच्छा से सूचित कर दिया था। यदि कंपनी द्वारा सुसंगत प्रारूप कंपनी रजिस्ट्रार को विलंब से प्रेषित किया गया तो उसका भुगतान वह नहीं कर सकता।

6. जैसा कि अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सही रूप से कथित किया गया है कि प्रकरण में तथ्यात्मक विवाद शामिल है। कंपनी रजिस्ट्रार के समक्ष विलंबित प्रस्तुति का क्या प्रभाव होगा, यह विचारण का बिंदु है। क्या प्रत्यर्थी संख्या 1 ने कंपनी को सूचित किया और क्या उसके त्याग पत्र को स्वीकार करने का कोई प्रस्ताव था, इन सभी तथ्यों पर साक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक है इसलिए उच्च न्यायालय का मत न्यायोचित नहीं था।

7. जहाँ तक निदेशकों के खिलाफ कंपनी में उनके पद के संदर्भ में आरोपों का प्रश्न है, तो परिवाद में कंपनी के अभियुक्त निदेशकों के पद के संदर्भ में विनिर्दिष्ट रूप से अभिकथन हैं।

8. इस प्रक्रम पर इस न्यायालय द्वारा विभिन्न मामलों में की गई टिप्पणियों का उल्लेख करना सुसंगत है।

9. एस.वी. मजूमदार बनाम गुजरात राज्य उर्वरक कंपनी लिमिटेड और ए.एन.आर. (2005 (4) एस.सी.सी. 173) में निम्न सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं:

> "3. प्रत्यर्थियों द्वारा परिवाद में अंकित तथ्यों के अनुसार प्रत्यर्थी संख्या 1 (इसके पश्चात 'परिवादी से संदर्भित') के अनुसार प्रत्यर्थी संख्या 1 ने मेसर्स गारवेयर नायलन्स लिमिटेड (इसके पश्चात 'कंपनी' से संदर्भित) (आरोपी संख्या 14) को सामान की उधार पर आपूर्ति की। कंपनी द्वारा जारी चैक आदेशिती बैंक द्वारा अपर्याप्त निधि के आधार पर आदरित नहीं किए गए। विधिक नोटिसों के पश्चात भी राशि अदा नहीं की गई। परिवाद में कंपनी के साथ-साथ 14

अभियुक्त व्यक्तियों को नामित नहीं किया गया था। कुछ अभियुक्त व्यक्ति निदेशक थे और दूसरे कर्मचारी। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, वडोदरा द्वारा विपणन प्रबंधक, जिन्होंने स्वयं के व परिवादी कंपनी की आरे से परिवाद पेश किया था, के बयान अभिलिखित करने के पश्चात अधिनियम की धारा 138 सपठित धारा 420 और 114 भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षिप्त में 'भा.दं.सं.) में दंडनीय अपराध कथित तौर पर कारित करने के लिए विचारण हेतु सभी अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध समन जारी कर दिए। समन जारी करने वाले आदेश को आपराधिक पुनरीक्षण आवेदनों से चुनौती दी गई जिन्हें आदेश दिनांक 21.03.1996 से खारिज किया गया। कहा उक्त समान निर्णय और आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष विशेष आपराधिक आवेदनों से चुनौती दी गई और याचिकाकर्ताओं के कथनानुसार विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करने के लिए उक्त आवेदनों को प्रत्याहरित करने की अनुमति दी गई। कायर्वाही को ड्रोप करने की प्रार्थना का आवेदन प्रस्तुत किया गया। उक्त आवेदन आदेश दिनांक 21.08.1997 से नामंजूर किया गया। उक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत किया गया। उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती का मुख्य आधार यह था कि अधिनियम की धारा 141 (1) के अनुसार अभियुक्त व्यक्ति कथित तौर पर कारित किए गए अपराध के समय कंपनी के व्यवसाय के संचालन के प्रभारी और/या उत्तरदायी हो, इस संदर्भ में कोई सामग्री नहीं थी। यह भी तर्क दिया गया कि धारा 141 की उपधारा (2) का प्रावधान लागू नहीं होता है जिसमें कंपनी के वे व्यक्ति शामिल हैं,

जिनकी सहमति या मिलीभगत या किसी उपेक्षा से अपराध कारित होता है। उच्च न्यायालय ने उक्त तर्कों को स्वीकार नहीं किया और निर्णीत किया कि विवाद का न्यायनिर्णयन विचारण के समय किया जाएगा। न्यायालय ने माना कि याचिका द्वारा प्रारंभिक स्तर पर आपराधिक कार्यवाहियों को लंबित करने का अस्वीकार्य प्रयास किया गया।

XX XX XX

8. हमारे मत में निचली अदालतों के समक्ष अनिवार्य रूप से कार्यवाहियों को खत्म करने की प्रार्थना इस आधार पर की गई थी कि अभियोग में अधिनियम की धारा 141 के अंतर्गत कार्यवाही करने का कोई आधार नहीं है। इन प्रश्नों का न्यायनिर्णयन विचारण के समय किया जाना है। कोई व्यक्ति कंपनी के व्यवसाय के संचालन का प्रभारी है या उसके लिए उत्तरदायी है, इस तथ्य का न्यायनिर्णयन दोनों पक्षों द्वारा पेश की गई सामग्री के आधार पर किया जाना है। धारा 141 उपधारा (2) एक ऐसा प्रावधान है जो उपरोक्त वर्णितानुसार कुछ विनिर्दिष्ट परिस्थितियों में प्रवाहित होता है। उक्त प्रावधान के लागू होने की परिस्थितियां विद्यमान है या नहीं यह भी विचारण का विषय है। इसी तरह अभियोग दोष को आकर्षित करने के पर्याप्त है या नहीं यह भी विचारण का विषय है।

9. अधिनियम की व्यवस्था के अंतर्गत अगर अधिनियम की धारा 138 के अंतर्गत अपराध कारित करने वाला व्यक्ति एक कंपनी है तो धारा 141 के अनुसार ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो कंपनी के कारबार के

संचालन के लिए उसका भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी ऐसे अपराध के लिए दोषी होगी। उपधारा (1) के परंतुक के अनुसार उपधारा की कोई बात ऐसे व्यक्ति को दण्ड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना कारित किया गया था अथवा उसने सम्यक तत्परता बरती थी। इस संदर्भ में सबूत का भार अभियुक्त द्वारा उन्मोचित किया जाएगा।"

10. धारा 141 में 3 श्रेणी के व्यक्ति शामिल हैं जो निम्नरूपेण हैं:

(1) अपराध कारित करने वाली कंपनी।

(2) प्रत्येक व्यक्ति जो उस कंपनी के कारोबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक था और उसके प्रति उत्ततरदायी था।

(3) अन्य कोई व्यक्ति जो कंपनी का निदेशक या प्रबंधक या सचिव या अधिकारी है जिसकी मोनानुकूलता या जिसकी उपेक्षा के कारण कंपनी ने अपराध कारित किया।

11. पेश होने वाली साक्ष्य आरोपों को साबित करेगी या नहीं, यह विचारण का मामला है। यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि धारा 141 की उपधारा (1) का परंतुक अभियुक्त को उस पर सबूत के भार को उन्मोचित करते हुए अपनी निरपराधता साबित करने के लिए सक्षम बनाता है। 10. एन. रंगाचारी बनाम भारत संचार निगम लिमिटेड (2007) (5) एस.सी.सी. 108), निम्नरुपेण प्रतिपादित किया गयाः

"19. वाणिज्यिक संसार में कंपनी के साथ संव्यवहार करने वाला व्यक्ति यह उपधारणा करने का हकदार है कि कंपनी के निदेशक कंपनी के कारोबार के प्रभारी हैं। अगर कंपनी के ज्ञापन या लेखों

द्वारा उनकी शक्तियों पर कोई प्रतिबंध लगाए जाते हैं, तो उक्त तथ्य निदेशकों को विचारण में स्थापित करना है। इसी संदर्भ में कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 प्रावधानित करती है कि जब अपराधी कंपनी है, तो ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही कंपनी भी ऐसे अपराध के लिए दोषी समझे जाएंगे। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि परिवाद में यह अभियोग कि नामित अभियुक्तगण कंपनी के निदेशक हैं, स्वतः यह इंगित करता है कि वे कंपनी के प्रभारी थे और कंपनी की ओर से कार्य कर रहे थे। गोवर और डेविस के आधुनिक कंपनी कानून के सिद्धांत के 17वें संस्करण में पहचान के विचार के पीछे का सिद्धांत निम्नरुपेण हैः

अंतर्निहित सिद्धांत के विभिन्न सूत्रीकरण के मामले खोलना संभव है और नवीनतम परिभाषाएं यह प्रस्तावित करती हैं कि आज न्यायालय पहचान के आधार पर आरोपण के नियम को कुछ हद तक नया दायरा प्रदान देने के लिए तैयार है। लेनार्ड्स कैरीइंग कंपनी मामला (1915 एसी 705) (एच.एल.) के मूल सूत्रीकरण में लॉर्ड हाल्डेन ने ऐसे व्यक्ति पर पहचान निश्चित की, जो वास्तव में निगम का निदेशक मन और इच्छा है, जो निगम के व्यक्तित्व का केन्द्र और दंभ है। हाल ही में, हालांकि, प्रिवी काउंसिल की ओर से मेरिडियन ग्लोबल मामले (1995 (2) ए. सी. 500 (पी. सी.) में लॉर्ड हॉफमैन ने ऐसे दृष्टिकोण को कंपिनयों की भ्रामक सामान्य तत्वमीमांसा के रूप में आलोचना की है। हर मामले में यही प्रश्न था कि प्रश्नगत कानून

या अन्य विधि के नियम के अर्थगठन में पहचान नियम के प्रयोजन के लिए किसे कंपनी का नियंत्रक माना जाएगा।"

11. इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 के विरुद्ध कार्यवाही को अपास्त करना न्यायोचित नहीं था। इसलिए प्रथम प्रकरण में प्रत्यर्थी संख्या 1 की हद तक उच्च न्यायालय द्वारा कार्यवाही अपास्त करना न्यायोचित नहीं था। अपील स्वीकार की जाती है।

12. एसएलपी (आपराधिक) संख्या 6049/2005 से उदभूत होने वाली आपराधिक अपील में पारित आदेश, जहाँ विवरण इंगित किए गए हैं, के परिप्रेक्ष्य में अन्य अपीलें भी स्वीकार किए जाने योग्य हैं। प्रत्येक मामले में उच्च न्यायालय के विवादित आदेश को अपास्त किया जाता है।

अपीलें स्वीकार गईं।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' के जरिए अनुवादक न्यायाधिकारी अनुराधा दाधीच (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय वादी के प्रतिबंधित उपयोग के लिए उसकी भाषा में समझाने के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।